व्याख्या के उपागम अथवा पद्धतियाँ
(METHODS OF EXPLANATION)

समाजशास्त्र में अनेक उपागमों का प्रयोग किया जाता है। इन्हें अनेक विद्वानों ने समाजशास्त्र में प्रयुक्त पद्धतियाँ (Methods), परिप्रेक्ष्य (Perspectives) अथवा सिद्धान्त (Theories) भी कहा है। प्रमुख विद्वानों के विचार निम्नांकित हैं—

(अ) चैपिन (Chapin) के अनुसार समाजशास्त्र में तीन प्रमुख उपागम प्रयोग किए जाते हैं—

(1) ऐतिहासिक उपागम (Historical method);

(2) सांख्यिकीय उपागम (Statistical method); तथा

(3) क्षेत्र कार्य अवलोकन उपागम (Field work observation method)।

(ब) एलवुड (Ellwood) के अनुसार समाजशास्त्र के निम्नांकित पाँच प्रमुख उपागम हैं—

(1) मानवशास्त्रीय अथवा तुलनात्मक उपागम (Anthropological or comparative method);

(2) ऐतिहासिक उपागम (Historical method);

(3) सर्वेक्षण उपागम (Survey method);

(4) निगमन उपागम (Deductive method); तथा

(5) दार्शनिक उपागम (Philosophical method)।

(स) हैट (Hatt) के अनुसार समाजशास्त्र के पाँच प्रमुख उपागम हैं—

(1) सामान्य ज्ञान उपागम (Common sense method);

(2) ऐतिहासिक उपागम (Historical method);

(3) अजायबघर अवलोकन उपागम (Museum observation method);

(4) प्रयोगशाला या प्रायोगिक उपागम (Laboratory or experimental method); तथा

(5) सांख्यिकीय उपागम (Statistical method)।

अगर हम समकालीन समाजशास्त्रीय अध्ययनों की समीक्षा करें तो हमें निम्नांकित उपागमों का प्रचलन सामान्यत: देखने को मिलता है—

(1) ऐतिहासिक उपागम (Historical method);

(2) तुलनात्मक उपागम (Comparative method);

(3) संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम (Structural-functional method);

(4) संघर्षात्मक उपागम (Conflict method);

(5) व्यवहारात्मक तथा अन्तर्क्रियात्मक उपागम (Behavioural and interactional method);

(6) सांख्यिकीय उपागम (Statistical method);

(7) एथनोमैथोडोलोजी (Ethnomethodology);

(8) आंचलिक-समाजशास्त्र (Ethno-sociology);

(9) आगमन एवं निगमन उपागम (Inductive and deductive methods);

(10) प्रयोगात्मक उपागम (Experimental method);

(11) स्वरूपात्मक उपागम (Formal method);

(12) व्यवस्थात्मक उपागम (Systemic method);

(13) विनिमयवादी उपागम (Exchange method); तथा

(14) उद्‌विकासवादी उपागम (Evolutionary method)।

इन उपागमों का संक्षिप्त परिचय होना समाजशास्त्र में प्रयोग किए जाने वाले उपागमों को विस्तृत रूप से समझने के लिए अनिवार्य है। अब हम समकालीन समाजशास्त्रीय अनुसन्धान में प्रयुक्त कुछ सर्वमान्य उपागमों को संक्षेप में बताएँगे।

(1) ऐतिहासिक उपागम (Historical Method)

ऐतिहासिक उपागम का समाजशास्त्रीय तथा मानवशास्त्रीय अध्ययनों में अनुपम घटनाओं एवं परिस्थितियों को समझने के लिए अनेक विद्वानों ने प्रयोग किया है। इसमें घटनाओं या परिस्थितियों का अध्ययन

उनके विशेष प्रारम्भिक कारकों (Initial conditions) का पता लगाकर किया जाता है। **बॉटोमोर** (Bottomore) के अनुसार ऐतिहासिक व्याख्या (जोकि ऐतिहासिक उपागम का मुख्य उद्देश्य है) का अभिप्राय उन प्रारम्भिक परिस्थितियों का वर्णन करना है जोकि विशेष घटना को जन्म देती है। इनके अनुसार सामाजिक विज्ञानों (जिनमें से समाजशास्त्र एक है) में वैज्ञानिक व्याख्या ऐतिहासिक व्याख्या के बिना अधूरी है। ऐतिहासिक उपागम में सामान्यत: ऐतिहासिक सामग्री या द्वितीय क्रम के प्रलेखों (Secondary documents) से संकलित आँकड़ों का ही प्रयोग किया जाता है, परन्तु अनुसन्धानकर्ता प्राथमिक आँकड़ों द्वारा इनकी प्रामाणिकता की जाँच कर सकता है।

ऐतिहासिक उपागम द्वारा सामान्यत: उत्पत्ति एवं विकास सम्बन्धी अध्ययन ही किए जा सकते हैं तथा अनुपम घटनाओं के अध्ययन के कारण यह सामान्यीकरण में अधिक सहायक नहीं है। समाजशास्त्र में **ऑगस्त कॉम्ट** (Auguste Comte), **हरबर्ट स्पेन्सर** (Herbert Spencer), **एल० टी० हॉबहाउस** (L. T. Hobhouse), **कार्ल मार्क्स** (Karl Marx), **मैक्स वेबर** (Max Weber), **सी० राईट मिल्स** (C. Wright Mills), तथा **रेमण्ड ऐरों** (Raymond Aron) जैसे विद्वानों ने इसका प्रयोग अपने अध्ययनों में किया है जबकि मानवशास्त्र में **रैडक्लिफ-ब्राउन** (Radcliffe-Brown) ने इसका प्रयोग किया है।

(2) तुलनात्मक उपागम (Comparative Method)

तुलनात्मक उपागम को काफी समय से समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र का सर्वोत्तम उपागम समझा जा रहा है। **दुर्खीम** (Durkheim) पहले समाजशास्त्री हैं जिन्होंने इस उपागम का विधिवत् प्रयोग अपने आत्महत्या के अध्ययन में किया। तुलनात्मक उपागम में दो घटनाओं, परिस्थितियों, संस्थाओं अथवा समाजों इत्यादि की तुलना की जाती है। तुलना के पश्चात् जो अन्तर एवं समानताएँ दिखाई देती हैं उनके आधार पर घटनाओं एवं परिस्थितियों को समझने का प्रयास किया जाता है। **डंकन मिशेल** (Duncan Mitchell) के अनुसार तुलनात्मक उपागम उस पद्धति को कहते हैं जिसमें भिन्न-भिन्न समाजों अथवा एक ही समाज के भिन्न-भिन्न समूहों की तुलना करके यह बताया जा सके कि उनमें समानता है अथवा नहीं, और यदि है तो क्यों है?

इमाइल दुर्खीम तथा **मैक्स वेबर** तुलनात्मक उपागम का प्रयोग करने वाले प्रमुख समाजशास्त्री माने जाते हैं। यद्यपि यह उपागम उपकल्पनाओं के निर्माण, विश्लेषणात्मक अध्ययनों तथा सामान्यीकरण में सहायक है फिर भी इसके प्रयोग में अनेक सावधानियाँ रखनी पड़ती हैं। दुर्खीम के अनुसार इसके द्वारा हम केवल एक ही समाज की भिन्न इकाइयों, एक समान स्तर (विकास) वाले समाजों तथा एक ही प्रकार की घटनाओं की भिन्न समाजों में तुलना कर सकते हैं।

(3) संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम (Structural-functional Method)

संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम आज मानवशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय अध्ययनों एवं अनुसन्धानों में प्रयोग किया जाने वाला एक प्रमुख उपागम माना जाता है। इस उपागम का विकास मुख्य रूप से उद्विकासवादी, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक उपागमों की सीमाओं को दूर करने के लिए किया गया है तथा इसमें काफी सफलता भी मिली है। संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम इकाई का विश्लेषण करने की वह पद्धति है जिसमें यह देखने का प्रयास किया जाता है कि इस इकाई के विभिन्न अंग या भाग कौन-से हैं, वे किस प्रकार से व्यवस्थित हैं तथा प्रत्येक अंग सम्पूर्ण इकाई की निरन्तरता एवं अस्तित्व बनाए रखने के लिए क्या भूमिका निभा रहा है। सरल शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि यह उपागम सम्पूर्ण इकाई का उसकी संरचना एवं प्रकार्य के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण करने की एक पद्धति है। इसका उद्देश्य इकाई का निर्माण करने वाले अंगों या भागों का पता लगाना तथा इन अंगों के स्थान, स्थिति एवं प्रकार्यात्मक सम्बन्धों का पता लगाना है।

समाजशास्त्र में इस उपागम के साथ **स्पेन्सर** (Spencer), **दुर्खीम** (Durkheim), **मर्टन** (Merton), **पारसन्स** (Parsons) तथा **लेवी** (Levy) जैसे विद्वानों के नाम तथा मानवशास्त्र में **रैडक्लिफ-ब्राउन** (Radcliffe-Brown), **मैलिनोव्स्की** (Malinowski), **नैडल** (Nadel), **फोर्ट्स** (Fortes) तथा **फिर्थ** (Firth) इत्यादि विद्वानों के नाम जुड़े हुए हैं।

(4) संघर्षात्मक उपागम (Conflict Method)

संघर्षात्मक उपागम द्वारा समाज में पाए जाने वाले तनाव व संघर्ष का विश्लेषण किया जाता है। इसके समर्थक हमारा ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करते हैं कि आधुनिक समाज तनाव व संघर्ष से आक्रांत है

और सामाजिक जीवन में सामान्य सहमति न होकर असहमति, प्रतिस्पर्द्धा तथा स्वार्थों में संघर्ष की प्रधानता होती जा रही है। **डेहरेन्डोर्फ** (Dahrendorf) के अनुसार संघर्ष उपागम की यह विशेषता है कि इसके समर्थक यह स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक समाज सदा परिवर्तन की प्रक्रियाओं के अधीन रहता है तथा सामाजिक परिवर्तन सर्वव्यापी है। साथ ही, प्रत्येक समाज सदा मतभेद तथा संघर्ष प्रदर्शित करता है और समाज का प्रत्येक तत्त्व इसके विघटन एवं परिवर्तन के लिए योगदान देता है।

डेहरेन्डोर्फ के अनुसार संघर्षात्मक उपागम की चार प्रमुख मान्यताएँ हैं—

(1) प्रत्येक समाज सदैव परिवर्तन की प्रक्रियाओं के अधीन रहता है तथा इसलिए परिवर्तन सर्वव्यापी है।

(2) प्रत्येक समाज सदैव मतभेद एवं संघर्ष प्रदर्शित करता है, अत: सामाजिक संघर्ष सर्वव्यापी है।

(3) समाज का प्रत्येक तत्त्व उसके विघटन एवं परिवर्तन के लिए योगदान देता है।

(4) प्रत्येक समाज कुछ सदस्यों पर अन्यों द्वारा बाध्यकारिता पर आधारित है।

अत: हम यह कह सकते हैं कि संघर्षात्मक उपागम में मूल्यों की एकात्मकता के स्थान पर संघर्ष की परिस्थितियों को सामाजिक व्यवस्था के केन्द्रीय तत्त्व के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। ये संघर्ष की परिस्थितियाँ शान्तिपूर्ण बाजारी सौदेबाजी से लेकर हिंसक घटनाओं तक किसी भी रूप में हो सकती हैं। संघर्ष समाज को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर देता है और इनकी व्याख्या संघर्ष-परिस्थिति के सन्दर्भ में ही की जा सकती है।

समाजशास्त्र में संघर्ष उपागम के साथ **सिमेल** (Simmel), **कोजर** (Coser), **मार्क्स** (Marx), **डेहरेन्डोर्फ** (Dahrendorf), **मिशेल** (Mitchell) तथा **ओपनहीमर** (Oppenheimer) आदि के नाम जुड़े हुए हैं। संघर्ष उपागम का प्रयोग यद्यपि मुख्य रूप से सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था, विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्था, का अध्ययन करने के लिए किया गया है, परन्तु यह संघर्ष की अन्य परिस्थितियों को समझने में भी सहायक है। इसके द्वारा हम मौलिक संघर्ष परिस्थितियों के वर्गीकरण, समाजीकरण एवं शिक्षण, क्रान्तिकारी और सन्धि परिस्थितियों, शक्ति के आदर्शों और व्यवस्थाओं से सम्बन्धित विविध प्रकार की अन्य समस्याओं का अध्ययन भी कर सकते हैं।

कार्ल मार्क्स को संघर्ष उपागम के समर्थकों में सबसे प्रमुख स्थान दिया जाता है। इन्होंने संघर्ष का आधार उत्पादन के साधन बताया है तथा सभी समाजों को वर्ग संघर्ष का इतिहास बताया है। मार्क्स के लिए वर्ग के हित तथा शक्ति के लिए संघर्ष सामाजिक तथा ऐतिहासिक क्रियाओं के मूल निर्णायक हैं। इनका वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त भौतिकवाद को महत्त्वपूर्ण स्थान देता है।

(5) व्यवहारात्मक व अन्तर्क्रियात्मक उपागम (Behavioural & Interactional Method)

व्यवहारिक या व्यवहारात्मक उपागम मानव व्यवहार की अवधारणा को प्रतिष्ठित करता है क्योंकि यह उपागम व्यक्तियों के व्यवहार (राजनीतिक व्यवहार सहित) के अध्ययन पर बल देता है चाहे वे व्यक्ति-शासित वर्ग के हों या शासक वर्ग के। इसमें व्यक्तियों के व्यवहार की तुलना भी की जाती है तथा यह आनुभविक एवं वैज्ञानिक अध्ययनों पर बल देता है। **आमण्ड** (Almond), **दहल** (Dahl), **ईस्टन** (Easton) तथा **लैसवैल** (Lasswell) जैसे विद्वानों के नाम इस उपागम के साथ जुड़े हुए हैं।

व्यवहारात्मक उपागम के चार प्रमुख लक्षण बताए जाते हैं—

(1) यह व्यक्तियों और सामाजिक समूहों के व्यवहार का विश्लेषण करने में सहायक हैं।

(2) यह सामाजिक मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्र से विषय-सन्दर्भ लेकर अनुसन्धान एवं सिद्धान्त का विकास करने में सहायक हैं।

(3) यह अनुसन्धान और सिद्धान्त की पारस्परिक अन्तर्निर्भरता में विश्वास करता है तथा इस तथ्य पर बल देता है कि तथ्य सिद्धान्त की ओर तथा सिद्धान्त तथ्य की ओर जाने चाहिए।

(4) यह मान्य, विश्वसनीय तथा परिशुद्ध प्रविधियों और पद्धतियों द्वारा तथ्यों के संकलन को महत्त्व प्रदान करता है।

व्यवहारात्मक उपागम ने अनुसन्धान की पद्धतियों एवं यन्त्रों को विकसित करने एवं उन्हें अधिक सटीक बनाने में विशेष योगदान दिया है। अन्तर्वस्तु विश्लेषण, केस विश्लेषण, साक्षात्कार एवं प्रेक्षण तथा सांख्यिकी के क्षेत्र में इसका विशेष योगदान रहा है।

राजनीतिशास्त्र में व्यवहारवादी उपागम को एक आन्दोलन माना गया है। आज व्यवहारात्मक आन्दोलन अपने अगले चरण उत्तर-व्यवहारवादी (Post-behavioural) अवस्था की ओर बढ़ गया है। यह एक प्रकार से व्यवहारात्मक उपागम की उपलब्धियों और विशेषताओं को बनाए रख कर समाज की तत्कालीन समस्याओं, संकटों और चुनौतियों का अध्ययन करने तथा उनके समाधान की माँग करता है।

अन्तर्क्रियात्मक उपागम क्रिया (Action) की अवधारणा से जुड़ा हुआ है तथा व्यक्तियों की क्रियाओं के अध्ययन पर बल देता है। क्रिया के अन्तर्गत वह सारा व्यवहार सम्मिलित किया जा सकता है जिसके साथ कर्ता का प्रातीतिक अर्थ होता है अर्थात् जो अन्य व्यक्तियों से प्रभावित होता है। इस उपागम द्वारा अध्ययन करने वालों में **वेबर** (Weber), **पेरेटो** (Pareto), **मीड** (Mead), **ब्लमर** (Blumer), **गॉफमैन** (Goffman) तथा **पारसन्स** (Parsons) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(6) सांख्यिकीय उपागम (Statistical Method)

सांख्यिकीय उपागम परिमाणात्मक अध्ययनों में अधिक उपयोगी है। इससे प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण अधिक यथार्थ एवं वैज्ञानिक रूप से किया जाता है। **लोविट** (Lovitt) के अनुसार सांख्यिकीय उपागम के अन्तर्गत किसी घटना की व्याख्या, विवरण एवं तुलना के लिए संख्यात्मक तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण एवं सारणीयन किया जाता है। इसकी प्रकृति परिमाणात्मक अथवा विवेचनात्मक होती है तथा यह विस्तृत क्षेत्र में विशाल समूह का अध्ययन करने में सहायक है। क्योंकि यह वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है अत: इसके द्वारा किए गए अध्ययनों में अधिक निश्चितता, परिशुद्धता, विश्वसनीयता तथा स्पष्टता पाई जाती है और साथ ही सामान्यीकरण भी सम्भव है।

(7) एथनोमैथोडोलोजी (Ethnomethodology)

पिछले 10–15 वर्षों में सामाजिक घटनाओं का अधिक यथार्थ रूप तथा वास्तविकता का प्रत्यक्ष एवं निकटता से अध्ययन करने के लिए इस नवीन उपागम का निर्माण किया गया है तथा इसने अनेक परम्परागत उपागमों, विशेष रूप से संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम, की मान्यताओं को चुनौती देना शुरू कर दिया है। **हेरोल्ड गारफिंकल** (Herold Garfinkel) का नाम इस उपागम के साथ मुख्य रूप से लिया जाता है। यह उपागम मानवीय व्यवहार के उन पक्षों का अध्ययन करने पर बल देता है जो व्यक्ति की दैनिक क्रियाओं एवं व्यवहारों से सम्बन्धित हैं। इसमें मुख्य रूप से तीन पहलुओं, (i) दैनिक जीवन की सामान्य क्रियाएँ, (ii) भाषा का सामाजिक पक्ष, तथा (iii) सामाजिक प्रतिमानों का व्यावहारिक पक्ष, के अध्ययन को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

(8) आंचलिक समाजशास्त्र (Ethno-Sociology)

यह उपागम एक नवीन दृष्टिकोण है जो इस मान्यता पर आधारित है कि विकसित देशों के सन्दर्भ में दी गई अवधारणाएँ, परिप्रेक्ष्य एवं सिद्धान्त अन्य समाजों (विशेष रूप से विकासशील समाजों) के अध्ययन में अनुपयुक्त एवं निरर्थक हैं, अत: किसी विशेष समाज के सन्दर्भ में निर्मित सिद्धान्त ही सामाजिक वास्तविकता को समझने में अधिकतम महत्त्वपूर्ण हैं।

(9) आगमन एवं निगमन उपागम (Inductive and Deductive Perspectives)

आगमन एवं निगमन उपागम विज्ञान की दो मौलिक पद्धतियाँ हैं जिनका प्रयोग समाजशास्त्र में किया जाता है। इन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है—

(अ) आगमन उपागम—यह वह उपागम है जिसमें अनुसन्धानकर्ता कुछ विशिष्ट तथ्यों के आधार पर सामान्य तथ्यों का निरूपण करता है, अर्थात् इसमें विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ने का प्रयास किया जाता है। **पी० वी० यंग** (P. V. Young) के अनुसार, "आगमन किसी विशिष्ट तथ्य से तथ्य की सम्पूर्ण श्रेणी (या समूह) को, वास्तविक तथ्यों से सामान्य तथ्यों को, तथा व्यक्तिगत उदाहरणों से सार्वभौमिक उदाहरणों को तर्क के आधार पर समझने की एक प्रक्रिया है।"

आगमन उपागम में क्योंकि नित्यप्रति के निरीक्षणों एवं अनुभवों या भूतकाल की घटनाओं के क्रम के आधार पर सामाजिक नियमों का प्रतिपादन किया जाता है, अत: अनेक विद्वान् इस उपागम को आनुभविक उपागम (Empirical Method) या ऐतिहासिक उपागम (Historical Method) के नाम से भी जानते हैं। परन्तु इसे आगमन उपागम का नाम देना ही अधिक उचित है। यह उपागम केवल उन्हीं घटनाओं एवं परिस्थितियों के

अध्ययन में अधिक उपयुक्त है जिनमें पर्याप्त मात्रा में सादृश्यता या समानता पाई जाती है क्योंकि इसमें कुछ इकाइयों के बारे में जानकारी के आधार पर पूरी श्रेणी के बारे में सामान्यीकरण किया जाता है।

(ब) निगमन उपागम—यह आगमन उपागम के पूर्णत: विपरीत उपागम है अर्थात् इसमें हम सामान्य से विशिष्ट की ओर चलते हैं। **पी० वी० यंग** (P. V. Young) के अनुसार, ''निगमन सामान्य से विशिष्ट, सार्वभौमिक से व्यक्तिगत तथा किन्हीं आधार-वाक्यों (Premises) से उनकी अनिवार्य विशेषताओं को तर्क के आधार पर निकालने की एक प्रक्रिया है।'' इस उपागम द्वारा अनुसन्धानकर्ता जिन विशिष्ट तथ्यों का पता लगाता है उनका सामाजिक घटना या तथ्यों के सम्बन्धों में प्रचलित सामान्य नियमों के आधार पर अनुमोदन करता है।

आगमन एवं निगमन उपागम, दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं तथा सामाजिक अध्ययनों व अनुसन्धानों में इनके आधार पर सामान्य निष्कर्षों को निकाला जाता है।

(10) प्रयोगात्मक उपागम (Experimental Method)

प्राकृतिक विज्ञानों में अनुसन्धान मुख्य रूप से प्रयोगात्मक उपागम या प्रयोगशाला उपागम (Laboratory Method) द्वारा किया जाता है। इस उपागम में किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों या दशाओं के अन्तर्गत अध्ययन-वस्तु को सामने रखकर उसका अध्ययन किया जाता है। सामाजिक विज्ञानों में भी प्रयोगात्मक उपागम का प्रयोग किया जाता है। यह अधिक सामान्य उपागम नहीं बन पाया है क्योंकि सामाजिक घटनाओं पर नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं है। साथ ही, सामाजिक विज्ञानों की विषय-वस्तु को प्रयोगशाला की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। प्रयोगशाला उपागम में अध्ययन- सामग्री को दो समूहों में विभाजित किया जाता है—(i) नियन्त्रित समूह (Controlled group) तथा (ii) प्रायोगिक समूह (Experimental group)। नियन्त्रित समूह को जैसा है वैसे ही रखा जाता है तथा इसकी तुलना प्रायोगिक समूह से की जाती है जिसमें कि परिवर्तन किया जाता है। **चैपिन** (Chapin) के अनुसार समाजशास्त्रीय अनुसन्धान में प्रयोगात्मक प्ररचना की अवधारणा नियन्त्रण की दशाओं के अन्तर्गत निरीक्षण द्वारा मानवीय सम्बन्धों के व्यवस्थित अध्ययन की ओर संकेत करती है। समाजशास्त्रीय अनुसन्धान में प्रयोगात्मक उपागम का प्रयोग प्रमुख रूप से तीन प्रकार से किया जाता है—(i) केवल पश्चात् परीक्षण (Ater only experiment), (ii) पूर्व-पश्चात् परीक्षण (Before- after experiment) तथा (iii) कार्योत्तर अथवा कार्यान्तर तथ्य परीक्षण (Ex-post-facto experiment)।

(11) स्वरूपात्मक उपागम (Formal Method)

प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों द्वारा किए जाने वाले अध्ययन विकासवादी एवं विश्वकोशीय (Encyclopaedic) प्रकृति के थे तथा इसके विरोध-स्वरूप प्रतिक्रिया के कारण समाजशास्त्र में **जार्ज सिमेल** (Georg Simmel) द्वारा एक नवीन उपागम की शुरूआत की गई जिसे स्वरूपात्मक अथवा व्यवस्थित समाजशास्त्र या उपागम कहा जाता है। इसमें सामाजिक स्वरूपों के अध्ययन पर बल दिया जाता है। सिमेल ने यह तर्क दिया कि समाजशास्त्र एक नवीन पद्धति है। यह तथ्यों के अवलोकन का नया तरीका है जिस पर अन्य सामाजिक विज्ञान भी विचार करते हैं। अत: समाजशास्त्रियों को सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूपों तथा अन्तर्क्रियाओं पर ही अधिकतर विचार करना चाहिए। इसमें क्रियाओं के उन प्रकारों का भी अध्ययन किया जाना चाहिए जो व्यक्तियों के बीच सूक्ष्म एवं तीव्र रूप से बदलते रहते हैं तथा जिनका अध्ययन अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र में नहीं किया जाता। बाद में, इसके समर्थक दो श्रेणियों में विभाजित हो गए। **वान वीज** (Von Wiese) ने इस उपागम का स्पष्टीकरण करके सामान्य समाजशास्त्र का निर्माण करने का प्रयास किया, जबकि **जी० सी० होमन्स** (G. C. Homans) ने सामाजिक व्यवहार के प्रारम्भिक रूपों का अध्ययन करने का प्रयास किया।

संक्षेप में, यह उपागम अन्तर्क्रिया के छोटे स्वरूपों के अध्ययन पर बल देता है। यह उपागम हमें मानव समाज के अध्ययन के लिए उचित पद्धति भी प्रदान करते हैं। यह वैज्ञानिक सामान्यीकरणों में भी अन्य उपागमों की अपेक्षा अधिक सहायक है।

(12) व्यवस्थात्मक उपागम (Systemic Method)

व्यवस्थात्मक उपागम का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में बढ़ते हुए सहयोग का परिणाम है। 'व्यवस्था' शब्द से किसी वस्तु अथवा समग्र के विभिन्न अंगों का तथा इनमें पाए जाने वाले परस्पर सम्बन्धों का बोध होता है। व्यवस्था का अभिप्राय समाकलित सम्पूर्णता (Integrated whole)

अथवा समग्रता है अर्थात् ऐसी समग्रता से है जिसके अंग परस्पर जुड़े हुए हैं तथा अपना-अपना काम ठीक प्रकार से करते हुए उस समग्रता में समन्वय बनाए रखते हैं। 'सामाजिक व्यवस्था' समाज के विभिन्न अंगों में पाए जाने वाले समन्वय, सन्तुलन अथवा सम्बद्धता से सम्बन्धित है जोकि किसी न किसी सीमा तक प्रत्येक समाज में पाई जाती है।

सर्वप्रथम इस उपागम का प्रयोग मानवशास्त्र में किया गया तथा तत्पश्चात् इसे समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, राजनीतिशास्त्र एवं राजनीतिक समाजशास्त्र में अपनाया गया। मानवशास्त्र तथा समाजशास्त्र में इस उपागम के साथ **दुर्खीम** (Durkheim), **रैडक्लिफ-ब्राउन** (Radcliffe- Brown), **मैलिनोव्स्की** (Malinowski), **मर्टन** (Merton) तथा **पारसन्स** (Parsons) के नाम जुड़े हुए हैं, जबकि राजनीतिशास्त्र में **ईस्टन** (Easton), **आमण्ड** (Almond) तथा **केपलान** (Kaplan) के नाम इस उपागम के साथ जुड़े हुए हैं।

व्यवस्थात्मक उपागम की निम्नांकित मान्यताएँ हैं—

(1) यह सन्तुलन पर बल देता है अर्थात् इसके समर्थक यह स्वीकार करते हैं कि व्यवस्था के अन्दर स्वचालित यन्त्र होते हैं जो कार्यों में सन्तुलन तथा पर्यावरण से अनुकूलन बनाए रखते हैं।

(2) यह संरचनाओं के विश्लेषण की अपेक्षा कर्ताओं की अन्तर्क्रियाओं एवं प्रकार्यों के विश्लेषण पर बल देता है।

(3) इसमें व्यवस्था की सम्पूर्णता अथवा समग्रता को स्वीकार किया जाता है तथा इसे पर्यावरण के सन्दर्भ में समझने का प्रयास किया जाता है।

(4) इसकी यह मान्यता है कि किसी व्यवस्था को किन्हीं निश्चित सीमाओं (Boundaries) द्वारा व्यक्त किया जा सकता है अथवा इन्हीं सीमाओं द्वारा विभिन्न व्यवस्थाओं में अन्तर किया जा सकता है।

व्यवस्थात्मक उपागम द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के विश्लेषण तथा विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं की तुलना करने का दावा किया गया है। यह उपागम संरचनात्मक- प्रकार्यात्मक उपागम की अपेक्षा अधिक विस्तृत माना जाता है क्योंकि इसमें व्यवस्था का अध्ययन संरचनाओं के विश्लेषण की अपेक्षा अन्तर्क्रियाओं एवं प्रकार्यों के विश्लेषण द्वारा किया जाता है तथा व्यवस्था में पाए जाने वाले सन्तुलन पर भी बल दिया जाता है। यह उपागम विशेष रूप से राजनीतिक व्यवस्थाओं एवं राजनीतिक व्यवहार के विश्लेषण में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है क्योंकि इस उपागम द्वारा हमें उन दशाओं का पता चल जाता है जोकि राजनीतिक व्यवस्था के अस्तित्व को निरन्तर बनाए रखती है। इससे हम यह भी पता लगा सकते हैं कि किस प्रकार निवेशन प्रकार्य निर्गतन प्रकार्यों में और निर्गतन प्रकार्य पुनर्निवेशन प्रक्रिया द्वारा फिर से निवेशन प्रकार्यों में परिवर्तित होते हैं और व्यवस्था में सन्तुलन बनाए रखते हैं।

(13) विनिमयवादी उपागम (Exchange Method)

सामाजिक विनिमय उपागम अधिक सुसंगत सैद्धान्तिक व्यवस्था नहीं है। इसमें ब्रिटिश व्यक्तिवादी दृष्टिकोण तथा फ्रांसीसी सामूहिकवादी दृष्टिकोण के तत्त्व पाए जाते हैं तथा यह उपयोगितावादी अर्थशास्त्र, प्रकार्यवादी मानवशास्त्र तथा व्यवहारवादी मनोविज्ञान का मिश्रण है। इस उपागम की प्रमुख मान्यता यह है कि व्यक्ति सदैव विनिमय द्वारा कुछ लाभ प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जोकि कीमत व फायदे (भौतिक अथवा अभौतिक) को ध्यान में रखकर शासित होता है। **जेम्स फ्रेजर** (James Frazer), **मैलिनोव्स्की** (Malinowski), **मार्सल मास** (Marcel Mauss) तथा **लैवी-स्ट्रास्स** (Levi-Strauss) के नाम इस उपागम के साथ जुड़े हुए हैं।

(14) उद्विकासवादी उपागम (Evolutionary Method)

यह उपागम अधिकांश प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों द्वारा अपनाया गया है तथा आज यह पुन: समाजशास्त्रीय अध्ययनों व अनुसन्धानों में प्रयुक्त किया जाने लगा है। संरचनात्मक-प्रकार्यवाद के समर्थकों के अध्ययनों तथा आधुनिकीकरण के ऐतिहासिक सिद्धान्तों में इसे स्पष्टत: देखा जा सकता है। यह परिवर्तन की प्रक्रियाओं (विशेषत: विभेदीकरण, विशेषीकरण तथा एकीकरण इत्यादि) जिनके द्वारा समाज सरल से जटिल स्वरूप प्राप्त करते हैं, के अध्ययन में अधिक सहायक है। इसका प्रयोग विविध रूपों में किया गया है। **मॉर्गन** (Morgan), **कॉम्ट** (Comte), **मार्क्स** व **एंगेल्स** (Marx and Engels), **स्पेन्सर** (Spencer), **दुर्खीम** (Durkheim), **स्पेन्गलर** (Spengler), **टॉयनबी** (Toynbee), **सोरोकिन** (Sorokin), **पारसन्स** (Parsons) तथा **ईसनस्टेड** (Eisenstedt) जैसे विद्वानों ने इस उपागम को अपनाया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि समाजशास्त्र में आज अनेक परिप्रेक्ष्य एवं उपागम प्रयोग में लाए जाते हैं। प्रत्येक उपागम सामाजिक वास्तविकता को समझने हेतु एक निश्चित अवधारणात्मक ढाँचा प्रदान करता है।

सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियम
(Rules for the Explanation of Social Facts)

अधिकांश समाजशास्त्रियों का यह कहना है कि सामाजिक तथ्य अपने प्रकार्य (Function) द्वारा ही अपना अस्तित्व बनाए रखते हैं अर्थात् कुछ विद्वान् सामाजिक तथ्यों की व्याख्या उनकी भूमिका द्वारा करके ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। उदाहरण के लिए—**ऑगस्त कॉम्ट** मानव जाति की सम्पूर्ण प्रगतिशील शक्ति का सम्बन्ध इस मौलिक प्रवृत्ति से जोड़ते हैं जो सभी परिस्थितियों में मनुष्य को निरन्तर अपनी स्थिति में सुधार करने के लिए प्रेरित करती है। **हरबर्ट स्पेन्सर** इस शक्ति को अधिकाधिक सुख की आवश्यकता से सम्बन्धित करते हैं।

परन्तु दुर्खीम इस प्रकार की व्याख्या से सन्तुष्ट नहीं होते। इनका कहना है कि यह बताने के लिए कि एक तथ्य क्यों उपयोगी है, यह व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है कि उसकी उत्पत्ति कैसे हुई अथवा वह आज जैसा है वैसा क्यों है। सामाजिक तथ्य उपयोगिता के बिना भी हो सकते हैं अथवा हो सकता है कि किसी समय उनकी उपयोगिता रहने के बाद अब उनकी उपयोगिता समाप्त हो गई हो और केवल आदत की जड़ता के कारण उनका अस्तित्व बना हुआ हो।

दुर्खीम सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के लिए एक नियम का उल्लेख करते हैं। यह है, ''तब, जब किसी सामाजिक घटना की व्याख्या की जाती है तो हमें उसको उत्पन्न करने वाले मौलिक कारण को तथा उसके द्वारा किए जाने वाले प्रकार्य को पृथक्-पृथक् खोजना चाहिए।'' इस प्रकार, इनके अनुसार व्याख्या को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है—

व्याख्या (Explanation) = कारण (Cause) + प्रकार्य (Function)

इस प्रकार, दुर्खीम व्याख्या को केवल प्रकार्य अथवा घटना की उपयोगिता तक ही सीमित नहीं रखना चाहते अपितु उस घटना के विकास के कारण को भी व्याख्या का ही एक अंग मानते हैं। अपने श्रम-विभाजन के अध्ययन में दुर्खीम ने तीन खण्डों में से एक खण्ड में प्रकार्य तथा दूसरे में उन कारणों तथा कारकों का उल्लेख किया है जिनसे श्रम-विभाजन का विकास होता है। तीसरे खण्ड में श्रम-विभाजन के सामान्य प्रारूपों का वर्णन किया गया है।

दुर्खीम सामाजिक तथ्यों की व्याख्या में समाजशास्त्रियों द्वारा प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति की भी आलोचना करते हैं। इनके अनुसार **ऑगस्त कॉम्ट** तथा **हरबर्ट स्पेन्सर** द्वारा दी गई व्याख्याएँ मनोवैज्ञानिक हैं। इनका कहना है कि सामूहिक प्रतिनिधान, संवेग तथा प्रवृत्तियाँ व्यक्तिगत चेतना की कतिपय विशिष्ट अवस्थाओं का परिणाम नहीं हैं अपितु उन अवस्थाओं का परिणाम होती हैं जिसमें कि सामाजिक समूह सम्पूर्ण रूप से स्थित होता है।

दुर्खीम सामाजिक तथ्यों की व्याख्या का दूसरा नियम देते हुए कहते हैं कि, ''एक सामाजिक तथ्य के निर्धारक कारणों को उससे पहले वाले सामाजिक तथ्यों में ढूँढना चाहिए न कि व्यक्तिगत चेतना की अवस्थाओं में।'' इसका अर्थ यह हुआ कि किसी सामाजिक घटना का कारण सामाजिक ही हो सकता है, मनोवैज्ञानिक नहीं। दुर्खीम उपर्युक्त कथन को केवल सामाजिक तथ्य के कारण के निर्धारण के लिए ही लागू करते हैं। अत: दुर्खीम पूर्व प्रस्तावना को यह कह कर पूरा करते हैं कि, ''एक सामाजिक तथ्य का कार्य सर्वदा किसी सामाजिक उद्देश्य के सम्बन्ध में खोजना चाहिए।'' इन्होंने आत्महत्या को धार्मिक एवं पारिवारिक समूहों में पाई जाने वाली एकता अथवा संश्लिष्टता के अंश से सम्बन्धित किया है।

इसके अतिरिक्त दुर्खीम इस बात पर भी बल देते हैं कि सभी सामाजिक प्रक्रियाओं की प्रथम उत्पत्ति सामाजिक समूह की आन्तरिक रचना में खोजी जानी चाहिए। समाजशास्त्रियों का प्रमुख कार्य वातावरण (Milieu) के विभिन्न पहलुओं की खोज करना होना चाहिए जो कि सामाजिक घटनाओं के क्रम पर कुछ प्रभाव डाल सकते हैं।

इस प्रकार, दुर्खीम सामाजिक तथ्यों की व्याख्या के नियमों को निर्धारित करते हैं तथा इन नियमों द्वारा समाजशास्त्रियों को सचेत करते हैं कि उन्हें सामाजिक तथ्यों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या से बचना चाहिए।●